**ओ३म्**

**‘स्वराज्य वा स्वतन्त्रता के प्रथम मन्त्र-दाता महर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महाभारत काल के बाद देश में अज्ञानता के कारण अन्धविश्वास व कुरीतियां उत्पन्न होने के कारण देश निर्बल हुआ जिस कारण वह आंशिक रूप से पराधीन हो गया। पराधीनता का शिंकजा दिन प्रतिदिन अपनी जकड़ बढ़ाता गया। देश अशिक्षा, अज्ञान, अन्धविश्वास, पाखण्ड व सामाजिक विषमताओं से ग्रस्त होने के कारण पराधीनता का प्रतिकार करने में असमर्थ था। सौभाग्य से सन् 1825 में गुजरात में महर्षि दयानन्द का जन्म होता है। लगभग 22 वर्ष तक अपने माता-पिता की छत्र-छाया में उन्होंने संस्कृत भाषा व शास्त्रीय विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। इससे उनकी तृप्ति नहीं हुई। ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान और मृत्यु पर विजय कैसे प्राप्त की जा सकती है, इसके उपाय ढूंढने के लिये वह घर से निकल गये और लगभग 13 वर्षों तक धार्मिक विद्वानों व योगियों आदि की संगति तथा धर्म ग्रन्थों का अनुसंधान करते रहे। इसी बीच सन् 1857 ईस्वी का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम भी हुआ जिसे अंग्रेजों ने कुचल दिया। इसमें महर्षि दयानन्द की सक्रिय भूमिका होने का अनुमान है परन्तु इससे सम्बन्धित जानकारियां उन्होंने विदेशी राज्य होने के कारण न तो बताई और न ही उनका किसी ने अनुसंधान किया। इसके बाद सन् 1860 में मथुरा में दण्डी गुरू स्वामी विरजानन्द के वह अन्तेवासी शिष्य बने और उनसे आर्ष संस्कृत व्याकरण और वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया। गुरु व शिष्य धार्मिक अन्धविश्वासों, देश के स्वर्णिम इतिहास व पराधीनता आदि विषयों पर परस्पर चर्चा किये करते थे। अध्ययन पूरा करने पर गुरु ने स्वामी दयानन्द को देश से अज्ञान, अन्धविश्वास, सामाजिक असमानता व विषमता दूर करने का आग्रह किया। स्वामी दयानन्द जी ने गुरु को इस कार्य को प्राणपण से करने का वचन किया और सन् 1863 में इस कार्य को आरम्भ कर दिया।

स्वामी जी सन् 1874 में काशी में यथार्थ वेदोक्त धर्म का प्रचार, समाज सुधार के कार्य व अन्धविश्वासों का खण्डन कर रहे थे। उनके एक भक्त राजा जयकृष्ण दास ने उन्हें अपने समस्त विचारों, वैदिक मान्यताओं व सिद्धान्तों का एक ग्रन्थ लिखने का आग्रह किया। अल्प काल में ही महर्षि दयानन्द ने यह ग्रन्थ लिख कर पूरा कर दिया जिसको **‘सत्यार्थ प्रकाश’** नाम दिया गया। लेखक ने इस ग्रन्थ का पुनः एक नया संशोधित संस्करण तैयार किया जो अक्तूबर, सन् 1883 में पूर्ण हो कर छपना आरम्भ हो गया था और सन् 1884 में प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि महर्षि दयानन्द वेद एवं समस्त वैदिक वांग्मय के पारदर्शी व अपूर्व विद्वान थे। उन्होंने अपने दिव्य ज्ञान चक्षुओं से जान लिया था कि ईश्वर, जीव व प्रकृति के समस्त सत्य रहस्य वेद और वैदिक साहित्य में निहित हैं। अन्य जितने में भी मत-मतान्तर उनके समय में प्रचलित थे वह सभी अज्ञान व असत्य मान्यताओं से युक्त थे व आज भी हैं। सभी मतों के धर्म ग्रन्थों में असत्य व अन्धविश्वासयुक्त मान्यताओं की भरमार थी जिसका दिग्दर्शन उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में किया है। देश की पराधीनता और इस कारण देश व देशवासियों के शोषण व उन पर होने वाले अत्याचारों से भी वह परिचित थे। वह जान गये थे कि पराधीनता का भी मुख्य कारण एक सत्य वेदोक्त मत का पराभव व नाना वेद विरुद्ध मतों का आविर्भाव, उनका प्रचलन व सामाजिक विषमता आदि थे। अतः सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय पर विचार करते हुए उन्होंने पराधीनता पर अपना ध्यान केन्द्रित कर व अपनी जान जोखिम में डालकर देश की स्वतन्त्रता का मूल मन्त्र देशवासियों को दिया। इस घटना के प्रकाश के कुछ समय बाद ही एक षडयन्त्र के अन्तर्गत उनका विषपान कराये जाने व समय पर समुचित चिकित्सा न होने के कारण देहावसान हो गया।

सन् 1883 में जिन दिनों महर्षि दयानन्द ने देश की आजादी विषयक यह पंक्तियां लिखी जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे, उस समय देश में सजग धार्मिक संस्था के रूप में हम ब्रह्म समाज को पाते हैं जिसके संस्थापक राजा राममोहन राय रहे हैं। यह मत व सम्प्रदाय तथा इसके संस्थापक अंग्रेजों के राज्य को भारत पर वरदान के रूप में देखता था। इससे आजादी विषयक विचार मिलने की सम्भावना नहीं थी। हमारे सनातन धर्म के विद्वानों की क्या स्थिति थी, इसका वर्णन वीर सावरकर जी ने किया है जो कि आर्य जगत प्रख्यात विद्वान प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी के शब्दों में प्रस्तुत करते हैं। वह अपनी पुस्तक **‘इतिहास प्रदूषण’** में लिखते हैं कि वीर सावरकर जी ने अपनी आत्मकथा में ऋषि दयानन्द तथा आर्य समाज से प्राप्त ऊर्जा व प्रेरणा की खुलकर चर्चा की है। यदि ये बन्धु (श्री आर्यमुनि, मेरठ और उनका वेदपथ पत्रिका में प्रकाशित एक लेख) लार्ड रिपन के सेवा निवृत्त होने पर काशी के ब्राह्मणों द्वारा उनकी शोभा यात्रा में बैलों का जुआ उतार कर उसे अपने कन्धों पर धर कर उनकी गाड़ी को खींचने वाला प्रेरक प्रसंग उद्धृत कर देते तो पाठकों को पता चल जाता कि इस विश्व प्रसिद्ध क्रान्तिकारी को देश के लिए जीने मरने के संस्कार व विचार देने वालों में ऋषि दयानन्द अग्रणी रहे। अतः सनातन धर्म के विद्वानों से भी अंग्रेजों के भारत से वापिस जाने और देश को स्वतन्त्र करने की मांग की आशा नहीं की जा सकती थी। यह महर्षि दयानन्द ही थे जिन्होंने अपने गुरू विरजानन्द प्रदत्त वैदिक संस्कारों के आधार पर परतन्त्रता का विरोध किया और सत्यार्थ प्रकाश में लिखा कि ‘‘कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सवार्वेपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय (देश में स्वराज्य, अज्ञान व अन्धविश्वास रहित वैदिक धर्म का पालन) सिद्ध होना कठिन है।” इससे पूर्व महर्षि दयानन्द ने भारत में विदेशी शासन का कारण बताते हुए लिखा है कि **‘‘अब अभाग्योदय से, और आर्यों के आलस्य-प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावत्र्त में आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र है। दुर्दिन जब आता है, तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है।”**

महर्षि दयानन्द लिखित यह स्वर्णिम शब्द ही देश की आजादी के आधार वाक्य बने। इस समय तक देश में किसी राजनीतिक दल का कोई नेता नहीं था। कांगे्रस की स्थापना सन् 1885 में महर्षि दयानन्द के इन वाक्यों के कई वर्ष बाद हुई। अतः आज देश भर में जो स्वतन्त्रता दिवस की अड़सठवीं वर्षगांठ बनाई जा रही है उसकी प्राप्ति के लिए सन् 1883 में मन्त्र व विचार प्रस्तुत करने का श्रेय महर्षि दयानन्द को है। दुःख है कि सारा देश महर्षि दयानन्द के इस योगदान पर मौन है। 21 वीं शताब्दी में इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है? स्वामी दयानन्द के स्वदेशीय राज्य को सर्वोत्तम बताने पर टिप्पणी करते हुए आर्यजगत के विख्यात विद्वान स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने अपनी टिप्पणी में लिखा है कि भारत में अंग्रेज व्यापारी बन कर आये। व्यापार के लिए उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की। धीरे-धीरे यही कम्पनी भारत में अंग्रेजी राज्य का आधार बन गई। उसकी अपनी सेना थी। इस सेना और भारतीय रियासतों के परस्पर संघर्ष के फलस्वरूप किसी भी एक पक्ष के सैनिक बल की सहायता से वह देश पर अधिकार करती गई। 1849 में पंजाब की विजय के साथ उसका यह अभियान पूरा हो गया और समूचे देश में यूनियन जैक फहराने लगा, परन्तु विज्ञान का नियम है--’To every action there is an equal and opposite reaction’ अर्थात प्रत्येक क्रिया की उतनी ही जोरदार और विरोधी प्रतिक्रिया होती है। भारतीयों के भीतर विद्रोह की आग सुलगने लगी, और 10 मई 1857 को ज्वाला बनकर भड़क उठी और देश के कोने-कोने में फैल गई। परन्तु कुछ ही दिनों में यह आग ठण्डी पड़ गई और भारतीय लोग खून का घूंट पीकर रह गये। इस क्रिया की प्रतिक्रिया भी अवश्यंभावी थी। ब्रिटिश सरकार ने कूटनीति का सहारा लिया। महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणापत्र (Proclamation) जारी किया। उसकी भाषा बड़ी लुभावनी थी, पर एक व्यक्ति इस कूटनीतिक चाल को भांप गया। उसने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में एक घोषणा की जिसे उपर्युक्त पंक्तियों प्रस्तुत किया गया है।

सुराज्य भी स्वराज्य का विकल्प नहीं होता--‘Good government is no substitute for self-government.’ इसके उद्घोषक ग्रन्थकार दयानन्द ने अपनी प्रार्थना पुस्तक (Prayer book) **‘आर्याभिविनय’** के माध्यम से अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे प्रतिदिन प्रार्थना किया करें कि **‘‘अन्य देशवासी राजा हमारे देश में न हों तथा हम पराधीन कभी न रहें।”** भारत के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि यह पूरी तरह वही घोषणा थी जिसके द्वारा 8 अगस्त 1929 को महात्मा गांधी ने **‘भारत छोड़ो’** और 31 दिसम्बर 1929 को लाहौर में उसके लिए संघर्ष करने की घोषणा की थी। इससे पूर्व 1906 में दादाभाई नौरोजी ने इसका उच्चारण किया था। किन्तु स्वामी दयानन्द ने 1875 में जब स्वराज्य का विचार भी किसी के मस्तिष्क में भी नहीं उपजा या पूर्ण स्वराज्य ही नहीं, चक्रवर्त्ती साम्राज्य की घोषणा की थी। आज जबकि अंग्रेज भारत छोड़ कर जा चुके हैं और हम स्वाधीनता का रसास्वादन कर रहे हैं तो कितने लोग है जो यह जानते हैं कि एक बार एक अंग्रेज कलक्टर ने स्वामी दयानन्द जी का भाषण सुनने के बाद कहा था कि **‘‘यदि आपके भाषण पर लोग चलने लग जाएं तो इसका परिणाम यह होगा कि हमें अपना बोरिया बिस्तर बांधना पड़ेगा।”** स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के वचनों तथा भावनाओं का गम्भीर अध्ययन करनेवाले 1911 की जनसंख्या के अध्यक्ष मिस्टर ब्लण्ट ने लिखा था-“Dayanand was not merely a religious reformer, he was also a great patriot. It would be fair to say that with him religious reform was a mere means to national reform.” (Census Report of 1911, Vol. XV, Part I, Chap. IV, P. 135) अर्थात् दयानन्द केवल धार्मिक सुधारक नहीं थे, वे एक महान् देशभक्त भी थे। यह कहना ठीक ही होगा कि उन्होंने धार्मिक सुधार को राष्ट्रीय सुधार के साधनरूप में ही अपनाया था।

इस लेख के माध्यम से हम यह बताना चाहते हैं कि महर्षि दयानन्द ही देश की आजादी के प्रथम मन्त्रदाता वा स्वराज्य और स्वतन्त्रता का विचार देने वाले महापुरूष थे। स्वामी दयानंद ने अपने ग्रन्थों व प्रवचनों में व अन्यत्र भी देशभक्ति के नाना विचार प्रस्तुत किये। देश की स्वतन्त्रता में उनका व उनके अनुयायी आर्यसमाजियों का प्रमुख योगदान है। अतः आज स्वतन्त्रता दिवस के दिन महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के योगदान की भी चर्चा करना आवश्यक है। यह बताना भी उचित होगा कि क्रान्तिकारी के आद्य गुरू पं. श्यामजी कृष्ण वम्र्मा, श्री गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक गुरू महादेव गोविन्द रानाडे, समाज सुधारक व आजादी के प्रमुख नेता स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, पं. राम प्रसाद बिस्मिल आदि भी महर्षि दयानन्द की शिष्य मण्डली के ही व्यक्ति थे। देश की आजादी के आन्दोलन में देश के सभी आर्यसमाजियों ने किसी न किसी रूप में भाग लिया था जिस कारण देश आजाद हुआ। महर्षि दयानन्द ने देश की आजादी, धार्मिक व समाज सुधार में जो योगदान किया उसके लिये देशवासियों ने उनका सही मूल्यांकन कर उनके साथ न्याय नहीं किया। देखें, कि कब तक देश उनकी उपेक्षा करता है? आज स्वतन्त्रता दिवस पर भी हमें उनकी उपेक्षा स्पष्ट दिखाई दे रही है। यदि यही शब्द किसी अन्य व्यक्ति ने कहे होते व उनके व आर्यसमाज जैसा योगदान किसी अन्य संस्था ने किया होता तो आज उसकी देश भर में जयजयकार हो रही होती। इसी के साथ हम इस लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**